धर्म की खोई हुई भाषा

शास्त्र, प्रतीक और आंतरिक रूपांतरण की पुनर्स्मृति

भगवद्गीता
योगसूत्रम्
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
जिज्ञासा का दीप जलाइए
और अज्ञान के अंधकार को दूर कीजिए।

धर्म की खोई हुई भाषा

शास्त्र, प्रतीक और आंतरिक रूपांतरण की पुनर्स्मृति

डॉ. चिराग अग्रवाल

SANĀTANA
REVEALED

Sanatana Revealed

धर्म की खोई हुई भाषा

शास्त्र, प्रतीक और आंतरिक रूपांतरण की पुनर्स्मृति

© डॉ. चिराग अग्रवाल, २०२६ सर्वाधिकार सुरक्षित।

इस प्रकाशन का कोई भी भाग लेखक या प्रकाशक की पूर्व लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम से - इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग अथवा अन्य किसी माध्यम से - पुनरुत्पादित, वितरित, संग्रहित या प्रसारित नहीं किया जा सकता, सिवाय संक्षिप्त उद्धरणों के, जिन्हें समीक्षा, शैक्षणिक चर्चा या समालोचनात्मक टिप्पणी के संदर्भ में उपयोग किया गया हो।

यह पुस्तक केवल शैक्षणिक, दार्शनिक और चिंतनपरक उद्देश्यों के लिए लिखी गई है।

इस पुस्तक में प्रस्तुत व्याख्याएँ मूल शास्त्रीय स्त्रोतों तथा संबंधित परंपराओं के अध्ययन के आधार पर सम्मानपूर्वक और सद्भावना के साथ प्रस्तुत की गई हैं। सनातन धर्म में विविध दार्शनिक परंपराएँ, संप्रदाय और व्याख्यात्मक दृष्टियाँ विद्यमान हैं; पाठकों को प्रोत्साहित किया जाता है कि वे मूल ग्रंथों तथा विभिन्न भाष्य-परंपराओं का स्वयं भी अध्ययन करें।

संस्कृत संदर्भों, लिप्यंतरणों, अनुवादों और व्याख्याओं की शुद्धता सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया गया है। फिर भी यदि कोई अनजानी त्रुटि रह गई हो, तो उसका उत्तरदायित्व लेखक का होगा।

लेखक : डॉ. चिराग अग्रवाल
प्रकाशक : Sanatana Revealed
आवरण विन्यास : Sanatana Revealed

अस्वीकरण : यह पुस्तक किसी भी आस्था, संप्रदाय, देवता, उपासना-पद्धति या ईमानदार आध्यात्मिक मार्ग का अपमान, अवमूल्यन या खंडन करने का प्रयास नहीं करती। इसका उद्देश्य शास्त्र-अध्ययन और चिंतन के माध्यम से सनातन धर्म के दार्शनिक, प्रतीकात्मक और आंतरिक रूपांतरणकारी आयामों के प्रति गहरी समझ विकसित करना है।

पाठकों को प्रोत्साहित किया जाता है कि वे विषय को खुले मन, विनम्रता और विवेक के साथ ग्रहण करें।

<u>समर्पण</u>

उन सभी जिज्ञासु मनों को -
जो केवल मानना नहीं, समझना चाहते हैं।

उन पाठकों को -
जो प्रश्न पूछने से भयभीत नहीं होते,
और श्रद्धा को चिंतन से अलग नहीं मानते।

तथा उन ऋषियों, आचार्यों और साधकों को -
जिन्होंने ज्ञान की ज्योति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवित रखा।

मंगलाचरण

असतो मा सद्गमय ।
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्माऽमृतं गमय ॥

asato mā sad gamaya
tamaso mā jyotir gamaya
mṛtyor mā'mṛtaṁ gamaya

"असत्य से सत्य की ओर ले चलो।
अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो।
मृत्यु से अमृतत्व की ओर ले चलो।"

— *बृहदारण्यक उपनिषद्* १.३.२८

ज्ञान की यह यात्रा केवल सूचना प्राप्त करने की यात्रा न बने, बल्कि आत्मचिंतन, विवेक और आंतरिक स्पष्टता की दिशा में एक विनम्र प्रयास बने - इसी भावना के साथ यह पुस्तक समर्पित है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥

na hi jñānena sadṛśaṁ pavitram iha vidyate

“इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं है।”

— *भगवद्गीता* ४.३८

लेखक की ओर से

यह पुस्तक किसी अंतिम निष्कर्ष या पूर्ण व्याख्या के रूप में नहीं लिखी गई है। यह एक प्रश्न से आरंभ हुई थी - क्या हम वास्तव में सनातन धर्म की उस भाषा को समझते हैं, जिसे हम पीढ़ियों से दोहराते आ रहे हैं?

समय के साथ मैंने यह अनुभव किया कि धर्म के अनेक शब्द, प्रतीक और कथाएँ हमारे जीवन में उपस्थित तो हैं, परंतु उनके पीछे की गहराई धीरे-धीरे धुंधली होती जा रही है। कथाएँ बची रहीं, पर चिंतन कम हो गया। अनुष्ठान बने रहे, पर उनके आंतरिक अर्थों पर संवाद कम होने लगा। श्रद्धा तो रही, किन्तु कई बार वह समझ से कटती चली गई।

इसी अनुभव ने मुझे मूल शास्त्रीय स्त्रोतों की ओर लौटने के लिए प्रेरित किया।

यह यात्रा किसी औपचारिक परंपरागत शिक्षा से नहीं, बल्कि जिज्ञासा, असहमति, भ्रम, प्रश्न और निरंतर अध्ययन से विकसित हुई। वेद, उपनिषद, भगवद्गीता, रामायण, महाभारत और अन्य ग्रंथों को पढ़ते समय बार-बार यह अनुभव हुआ कि सनातन धर्म केवल बाहरी पहचान या अनुष्ठानों की प्रणाली नहीं है। उसके भीतर चेतना, आत्मपरिष्कार, विवेक, प्रतीक और मानव मन की गहरी समझ छिपी हुई है।

इस पुस्तक का उद्देश्य परंपरा को अस्वीकार करना नहीं है। और न ही इसका उद्देश्य श्रद्धा को कमजोर करना है। इसके विपरीत, यह एक प्रयास है कि श्रद्धा और समझ, भक्ति और विवेक, परंपरा और चिंतन - इन सबके बीच पुनः संतुलन स्थापित किया जा सके।

जहाँ संभव हुआ है, वहाँ मूल शास्त्रीय संदर्भों को प्राथमिकता दी गई है। साथ ही यह भी प्रयास किया गया है कि भाषा ऐसी रहे जिसे आधुनिक पाठक बिना अत्यधिक तकनीकी जटिलता के समझ सकें।

मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि सनातन परंपरा अत्यंत विशाल है और किसी भी एक पुस्तक में उसकी सम्पूर्णता को समाहित करना संभव नहीं। अनेक विषयों पर भिन्न व्याख्याएँ और दृष्टिकोण स्वाभाविक हैं। यह पुस्तक उन्हीं में से एक विनम्र अध्ययनात्मक प्रयास है।

यदि यह पुस्तक पाठक को - मूल ग्रंथों की ओर पुनः देखने, प्रश्न पूछने, चिंतन करने और धर्म को केवल पहचान नहीं, बल्कि आंतरिक रूपांतरण की प्रक्रिया के रूप में समझने की दिशा में प्रेरित करे, तो इसका उद्देश्य सार्थक होगा।

— डॉ. चिराग अग्रवाल

इस पुस्तक को कैसे पढ़ें

यह पुस्तक केवल जानकारी देने के उद्देश्य से नहीं लिखी गई है। इसका उद्देश्य पाठक को सनातन धर्म के गहरे दार्शनिक, प्रतीकात्मक और आंतरिक आयामों पर चिंतन करने के लिए प्रेरित करना है। इसलिए इसे केवल तेज़ी से पढ़ने के बजाय धीरे-धीरे और विचारपूर्वक पढ़ना अधिक उपयोगी होगा।

इस पुस्तक में कई स्थानों पर - शास्त्रीय संदर्भ, संस्कृत श्लोक, प्रतीकात्मक व्याख्याएँ, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण और आधुनिक संदर्भों से जुड़े प्रश्न साथ में प्रस्तुत किए गए हैं। पाठकों से अपेक्षा नहीं है कि वे प्रत्येक विषय से तुरंत सहमत हों। कई विचार ऐसे हो सकते हैं जिन पर समय लेकर चिंतन करना अधिक उचित हो।

पुस्तक को पढ़ते समय निम्न बातों का ध्यान रखना उपयोगी होगा -

- इसे केवल धार्मिक कथा-पुस्तक की तरह न पढ़ें; इसे आत्मचिंतन के एक माध्यम की तरह पढ़ें।
- जहाँ संभव हो, दिए गए शास्त्रीय संदर्भों को स्वयं भी देखने का प्रयास करें।
- संस्कृत श्लोकों से भयभीत न हों; उनका उद्देश्य केवल मूल स्रोतों से परिचय कराना है।
- यदि किसी विषय पर अलग परंपराओं की भिन्न व्याख्याएँ हों, तो उन्हें विरोध नहीं, बल्कि सनातन परंपरा की बहुस्तरीयता के रूप में देखने का प्रयास करें।
- पुस्तक का उद्देश्य अंतिम निष्कर्ष देना नहीं, बल्कि प्रश्नों और समझ की प्रक्रिया को जीवित रखना है।

इस पुस्तक को क्रम से पढ़ना अधिक उपयोगी होगा, क्योंकि प्रत्येक अध्याय अगले अध्याय के लिए आधार तैयार करता है। फिर भी पाठक अपनी रुचि के अनुसार किसी विशेष अध्याय से भी आरंभ कर सकते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस पुस्तक को केवल ‘‘क्या लिखा है’’ के स्तर पर न पढ़ा जाए, बल्कि यह भी देखा जाए कि प्रस्तुत विचार जीवन, आचरण और चेतना से कैसे जुड़ते हैं। क्योंकि अंततः सनातन धर्म केवल जानने का विषय नहीं है - वह देखने, समझने और धीरे-धीरे स्वयं को रूपांतरित करने की प्रक्रिया भी है।

<u>वैचारिक अस्वीकरण</u>

यह पुस्तक सनातन धर्म को उसके मूल शास्त्रीय, दार्शनिक, प्रतीकात्मक और आंतरिक आयामों के माध्यम से समझने का एक अध्ययनात्मक प्रयास है। इसका उद्देश्य किसी संप्रदाय, परंपरा, देवता, आस्था, पूजा-पद्धति या व्यक्तिगत श्रद्धा का अपमान, खंडन या अवमूल्यन करना नहीं है।

पुस्तक में प्रस्तुत विचार वेद, उपनिषद, भगवद्गीता, रामायण, महाभारत तथा अन्य पारंपरिक स्त्रोतों के अध्ययन, उपलब्ध व्याख्याओं और लेखक के चिंतन पर आधारित हैं। अनेक विषयों पर विभिन्न आचार्यों, दर्शन-परंपराओं और संप्रदायों की भिन्न व्याख्याएँ संभव हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी एक मत को अंतिम सत्य के रूप में स्थापित करना नहीं, बल्कि पाठक को गहराई से सोचने और मूल स्त्रोतों की ओर पुनः देखने के लिए प्रेरित करना है।

जहाँ कथाओं, प्रतीकों और शास्त्रीय अवधारणाओं की मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक या प्रतीकात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गई है, वहाँ उनका उद्देश्य पारंपरिक श्रद्धा को नकारना नहीं, बल्कि उसके अतिरिक्त अर्थ-स्तरों को समझने का प्रयास करना है।

यह पुस्तक धार्मिक उपदेश, संप्रदायिक प्रचार या अंतिम प्रामाणिक भाष्य के रूप में नहीं, बल्कि अध्ययन, चिंतन और संवाद के एक विनम्र प्रयास के रूप में पढ़ी जानी चाहिए।

पाठकों को प्रोत्साहित किया जाता है कि वे स्वयं भी मूल ग्रंथों का अध्ययन करें, प्रश्न पूछें, चिंतन करें और संतुलित तथा स्वतंत्र समझ विकसित करें।

विषय सूची

प्रस्तावना : कथा और समझ के बीच बढ़ती दूरी 01

भाग I : कथाओं को समझने से पहले धर्म को समझना 05
अध्याय १ : धर्म क्या है? 07
अध्याय २ : शास्त्र क्या हैं? 15
अध्याय ३: सनातन ज्ञान की संरचना 22
अध्याय ४: भगवद्गीता आरंभ के लिए सर्वश्रेष्ठ क्यों है? 32

भाग II : धर्म को कैसे गलत समझा जाने लगा 39
अध्याय ५ : जब कथा समझ का स्थान ले लेती है 41
अध्याय ६ : टेलीविज़न, सिनेमा और स्मृति का पुनर्निर्माण 48
अध्याय ७ : "भगवान ने किया, मनुष्य नहीं कर सकते" - यह समस्या 54
अध्याय ८ : धर्म का केवल पहचान बन जाना 61

भाग III : शास्त्रों को सही ढंग से पढ़ना सीखना 69
अध्याय ९ : शाब्दिक, प्रतीकात्मक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक अर्थ 71
अध्याय १० : देवता, असुर और आंतरिक युद्धभूमि 77
अध्याय ११ : अवतार को समझना 84
अध्याय १२ : अलग-अलग पुराण अलग देवताओं को सर्वोच्च क्यों बताते हैं? 90

भाग IV : धर्म के सार से पुनः जुड़ना 97
अध्याय १३ : भक्ति और विवेक 98
अध्याय १४ : धर्म एक आंतरिक रूपांतरण के रूप में 105
अध्याय १५ : सनातन धर्म का अध्ययन कैसे आरंभ करें 111

परिशिष्ट 121
परिशिष्ट I : आरंभिक पाठकों के लिए अनुशंसित अध्ययन क्रम 122
परिशिष्ट II : महत्वपूर्ण संस्कृत शब्दों की सरल व्याख्या 128
परिशिष्ट III : इस पुस्तक में प्रयुक्त प्रमुख शास्त्रीय स्रोत 137
परिशिष्ट IV : अनुवाद और व्याख्या पर एक टिप्पणी 142

संदर्भ 147
लेखक परिचय 149

प्रस्तावना

कथा और समझ के बीच बढ़ती दूरी

सनातन धर्म विश्व की उन विरल सभ्यतागत परंपराओं में से एक है जहाँ दर्शन, मनोविज्ञान, नैतिकता, आध्यात्मिकता, अनुष्ठान, कला, संगीत, कथा और आत्मपरिवर्तन को कभी एक-दूसरे से पूर्णतः अलग नहीं माना गया। जिस परंपरा ने चेतना, अस्तित्व और आत्मा पर अत्यंत गहन प्रश्न उठाए, उसी ने उन विचारों को कथाओं, प्रतीकों, संवादों, उत्सवों और सामूहिक स्मृति के माध्यम से जनजीवन में भी जीवित रखा।

हजारों वर्षों तक यह ज्ञान केवल ग्रंथों में सुरक्षित नहीं रहा। वह जीवन के भीतर उपस्थित था - श्रवण में, चिंतन में, संवाद में, साधना में और आचरण में। धर्म केवल पूजा-पद्धति नहीं था; वह जीवन को देखने का दृष्टिकोण था। वह यह निर्धारित करता था कि मनुष्य कैसे सोचे, कैसे बोले, कैसे व्यवहार करे, कैसे निर्णय ले और स्वयं को इस व्यापक अस्तित्व से कैसे जोड़े।

किन्तु समय के साथ एक सूक्ष्म दूरी उत्पन्न होने लगी - लोगों और उनके अपने शास्त्रों के बीच।

कथाएँ जीवित रहीं, पर उनका गहरा उद्देश्य धीरे-धीरे धुंधला होने लगा। अनुष्ठान चलते रहे, पर अनेक लोग यह समझे बिना उन्हें दोहराते रहे कि वे भीतर किस परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं। श्रद्धा बनी रही, पर प्रश्न और चिंतन कम होते गए। श्रीराम, श्रीकृष्ण, शिव, देवी और अन्य दिव्य रूपों के प्रति भक्ति आज भी करोड़ों लोगों के जीवन का हिस्सा है, किन्तु उन कथाओं के भीतर छिपे दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और आत्मपरिवर्तनकारी आयाम सामान्य जनमानस से धीरे-धीरे दूर होते गए।

यह दूरी किसी एक घटना से उत्पन्न नहीं हुई। इसके पीछे अनेक कारण रहे - आक्रमण, शिक्षा परंपराओं का विघटन, संस्कृत अध्ययन का कम होना, औपनिवेशिक व्याख्याएँ, सामाजिक जड़ता, और बाद के समय में मनोरंजन-प्रधान प्रस्तुतियों का बढ़ना। पीढ़ियाँ बीतती गईं, और धीरे-धीरे लोगों ने स्मृतियाँ तो विरासत में पाईं, पर उन स्मृतियों को समझने के उपकरण खोते गए।

आज बहुत से लोग सनातन धर्म को प्रत्यक्ष शास्त्र-अध्ययन से नहीं, बल्कि धारावाहिकों, फिल्मों, छोटे वीडियो, सोशल मीडिया पोस्ट, लोकप्रिय कथनों या भावनात्मक भाषणों के माध्यम से जानते हैं। महाभारत और रामायण के पात्रों को लोग अक्सर मूल ग्रंथों से अधिक नाटकीय प्रस्तुतियों के माध्यम से पहचानते हैं। कई संवाद, जो कभी शास्त्रों में थे ही नहीं, बार-बार दोहराए जाने के कारण "सत्य" माने जाने लगते हैं। जटिल दार्शनिक विचार अत्यंत सरल नैतिक निष्कर्षों में बदल जाते हैं। कहीं हर कथा को केवल शाब्दिक रूप से पढ़ा जाता है, तो कहीं सब कुछ "मिथक" कहकर बिना समझे अस्वीकार कर दिया जाता है।

इस परिवर्तन का एक गहरा परिणाम यह हुआ कि अनेक लोगों ने शास्त्रीय कथाओं को आत्मपरिष्कार के दर्पण के रूप में देखना कम कर दिया। वे उन्हें केवल अलौकिक घटनाओं या "दिव्य व्यक्तियों" की असंभव जीवन-कथाओं के रूप में देखने लगे।

जब श्रीराम की मर्यादा, श्रीकृष्ण की बुद्धि, ऋषियों की तपस्या या महान पात्रों के आत्मसंयम की चर्चा होती है, तब अक्सर यह कहा जाता है - "वे भगवान थे, सामान्य मनुष्य ऐसा नहीं कर सकते।"

किन्तु इन कथाओं का उद्देश्य केवल दूर से पूजा करवाना नहीं था। वे मानव जीवन की संभावनाओं को दिखाने के लिए भी थीं - साहस, संयम, विवेक, करुणा, उत्तरदायित्व, भक्ति और आंतरिक स्पष्टता की संभावनाएँ। उनका उद्देश्य मनुष्य को उसकी सीमाओं का बहाना देना नहीं, बल्कि उसकी चेतना को ऊँचा उठाने की दिशा दिखाना था।

इसका अर्थ यह नहीं कि हर कथा को केवल प्रतीक बना दिया जाए या भक्ति को महत्वहीन समझा जाए। सनातन परंपरा ने सदैव बहुस्तरीय समझ को स्वीकार किया है। एक ही कथा एक साथ भक्तिपूर्ण, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक अर्थ धारण कर सकती है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब केवल बाहरी रूप बचता है और भीतर का उद्देश्य खो जाता है।

यह पुस्तक न तो श्रद्धा का विरोध करने का प्रयास है और न ही परंपराओं का उपहास करने का। यह यह भी नहीं कहती कि पूर्वजों ने सब कुछ "गलत" समझा। परंपराएँ समय, समाज और संस्कृति के साथ विकसित होती हैं। भक्ति परंपराओं ने भी अनेक कठिन कालों में धर्म की स्मृति को जीवित रखा है। यह पुस्तक उस निरंतरता के प्रति कृतज्ञता रखती है।

किन्तु केवल निरंतरता पर्याप्त नहीं है, यदि समझ धीरे-धीरे कम होती जाए।

कोई भी सभ्यता केवल अपनी कथाओं को दोहराने से जीवित नहीं रहती; वह तब तक जीवित रहती है जब तक वह उन कथाओं के भीतर छिपे ज्ञान से जुड़ी रहती है।

इसी कारण यह पुस्तक एक विनम्र प्रयास है — शास्त्रों की मूल भावना की ओर लौटने का। जहाँ संभव हो, वेद, उपनिषद, भगवद्गीता, रामायण, महाभारत और अन्य प्रमुख स्रोतों का प्रत्यक्ष उपयोग किया गया है। संस्कृत श्लोकों के साथ उनका लिप्यंतरण, अर्थ और सरल व्याख्या दी गई है ताकि वे पाठक भी, जो संस्कृत से परिचित नहीं हैं, इन विचारों से जुड़ सकें।

इस पुस्तक का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं है। इसका उद्देश्य धर्म को देखने की दृष्टि को पुनर्जीवित करना है - धर्म को केवल पहचान, परंपरा या अनुष्ठान के रूप में नहीं, बल्कि आत्मचिंतन, अनुशासन, समझ और आंतरिक रूपांतरण की जीवित प्रक्रिया के रूप में देखना।

धर्म की खोई हुई भाषा को पुनः प्राप्त करना केवल पुराने शब्दों को याद करना नहीं है। यह पुनः सीखना है कि देखना कैसे है।

भाग I : कथाओं को समझने से पहले धर्म को समझना

अध्याय १ **: धर्म क्या है?**

- “धर्म” केवल “रिलिजन” नहीं
- धर्म : जो धारण और संरक्षण करता है
- धर्म के ब्रह्मांडीय, नैतिक, सामाजिक और आंतरिक आयाम
- ऋत, सत्य और धर्म
- धर्म : केवल विश्वास नहीं, बल्कि सामंजस्य
- धर्म को केवल पहचान तक सीमित क्यों नहीं किया जा सकता

अध्याय २ **: शास्त्र क्या हैं?**

- शास्त्र का अर्थ और उद्देश्य
- श्रुति और स्मृति
- ज्ञान को विभिन्न रूपों में क्यों संरक्षित किया गया
- दर्शन, अनुष्ठान और आचरण का संबंध
- समय के साथ शास्त्रीय अध्ययन क्यों कम हुआ
- परंपरा, प्रथा और शास्त्रीय शिक्षाओं में अंतर

अध्याय ३ **: सनातन ज्ञान की संरचना**

- वेद
- वेदांग
- उपनिषद

- भगवद्गीता
- रामायण
- महाभारत
- पुराण
- दर्शन और दार्शनिक परंपराएँ
- भक्ति परंपराएँ और उनकी भूमिका
- इन सभी ग्रंथों को परंपरागत रूप से साथ में कैसे समझा गया

अध्याय ४ : भगवद्गीता आरंभ के लिए सर्वश्रेष्ठ क्यों है?

- गीता : दर्शन और जीवन के बीच सेतु
- कर्म, ज्ञान, भक्ति और योग
- गीता गहन वैदिक विचारों को सरल कैसे बनाती है
- अर्जुन का मानवीय संकट
- गीता सामान्य मनुष्यों से क्यों संवाद करती है
- कर्म, कर्तव्य और आंतरिक स्पष्टता

अध्याय १

धर्म क्या है?

"धर्म" केवल "रिलिजन" नहीं

मानव सभ्यता में कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका प्रयोग बहुत अधिक होता है, किन्तु जिनकी वास्तविक गहराई धीरे-धीरे धुंधली हो जाती है। "धर्म" ऐसा ही एक शब्द है। आधुनिक समय में इसे प्रायः केवल "रिलिजन" अर्थात् किसी विशेष मत, विश्वास-प्रणाली या पूजा-पद्धति के रूप में समझ लिया जाता है। यह अनुवाद सुविधाजनक अवश्य है, किन्तु पूर्ण नहीं।

जब लोग "रिलिजन" शब्द सुनते हैं, तब सामान्यतः उनके मन में किसी समुदाय, संस्था, ईश्वर-विश्वास, पूजा-विधि या धार्मिक पहचान की कल्पना आती है। किन्तु संस्कृत का "धर्म" शब्द केवल विश्वास तक सीमित नहीं है।

धर्म यह नहीं पूछता कि मनुष्य केवल क्या मानता है। वह यह भी पूछता है -

- मनुष्य कैसे जीता है,
- कैसे सोचता है,

- कैसे व्यवहार करता है,
- और जीवन को किस दिशा में ले जा रहा है।

इसी कारण सनातन परंपरा में धर्म को केवल पूजा-पद्धति नहीं माना गया। वह जीवन को संतुलित रखने वाला सिद्धांत था।

धर्म का संबंध केवल मंदिर, अनुष्ठान या बाहरी पहचान से नहीं था; उसका संबंध मनुष्य के चरित्र, कर्तव्य, चेतना और आचरण से भी था।

यही कारण है कि सनातन परंपरा में कोई व्यक्ति अत्यधिक धार्मिक दिखाई दे सकता है, परंतु यदि उसका जीवन छल, अहंकार, हिंसा और असंयम से भरा हो, तो शास्त्रीय दृष्टि से यह प्रश्न उठता है कि धर्म वास्तव में उसके भीतर कितना उपस्थित है।

इसलिए "धर्म" को केवल "रिलिजन" कहना उसकी व्यापकता को बहुत सीमित कर देता है।

धर्म : जो धारण और संरक्षण करता है

महाभारत में धर्म की एक अत्यंत प्रसिद्ध परिभाषा दी गई है -

प्राथमिक शास्त्रीय संदर्भ

स्त्रोत : महाभारत

संस्कृत : धारणाद्धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः ।

लिप्यंतरण : dhāraṇād dharma ity āhur dharmo dhārayate prajāḥ

अर्थ

धर्म को धर्म इसलिए कहा गया है क्योंकि वह धारण करता है, वह जीवन और समाज को संभालकर रखता है।

यह परिभाषा अत्यंत गहरी है।

यहाँ धर्म को किसी संप्रदाय, समुदाय या पहचान के रूप में नहीं, बल्कि उस शक्ति के रूप में देखा गया है जो व्यक्ति और समाज को विघटन से बचाती है।

एक परिवार तब तक स्थिर रहता है जब तक उसमें विश्वास, जिम्मेदारी और सम्मान बना रहता है। समाज तब तक संतुलित रहता है जब तक न्याय, अनुशासन और नैतिकता जीवित रहते हैं।

यदि सत्य समाप्त होने लगे, यदि लालच और स्वार्थ बढ़ जाएँ, यदि लोग केवल अपनी इच्छाओं के अनुसार जीवन जीने लगें, तो धीरे-धीरे अव्यवस्था उत्पन्न होती है।

इसीलिए धर्म केवल पूजा का विषय नहीं था। वह जीवन को संभालने वाला सिद्धांत था।

धर्म मनुष्य को यह स्मरण कराता है कि उसके कर्म केवल व्यक्तिगत नहीं होते; वे समाज, संबंधों और स्वयं उसके मन को भी प्रभावित करते हैं।

धर्म के ब्रह्मांडीय, नैतिक, सामाजिक और आंतरिक आयाम

सनातन परंपरा में धर्म को केवल सामाजिक नियमों तक सीमित नहीं रखा गया। उसे अस्तित्व की व्यापक व्यवस्था से जोड़ा गया।

धर्म के कई स्तर हैं।

१. ब्रह्मांडीय आयाम

वैदिक परंपरा में यह माना गया कि सम्पूर्ण अस्तित्व एक व्यवस्था के भीतर संचालित होता है। प्रकृति में लय है, संतुलन है, क्रम है। सूर्य समय पर उदित होता है, ऋतुएँ बदलती हैं, बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है।

यह व्यवस्था आकस्मिक नहीं मानी गई; इसे "ऋत" कहा गया।

मनुष्य से अपेक्षा की गई कि वह भी अपने जीवन को इस व्यापक संतुलन के अनुरूप बनाए।

२. नैतिक आयाम

धर्म का संबंध नैतिकता से भी है।

सत्य, करुणा, संयम, कर्तव्य, ईमानदारी और आत्मनियंत्रण जैसे गुण केवल सामाजिक नियम नहीं थे; वे चेतना को परिष्कृत करने वाले तत्व माने गए।

इसीलिए धर्म केवल "क्या सही है" का प्रश्न नहीं था। वह यह भी पूछता था - "क्या यह कर्म मनुष्य को भीतर से बेहतर बना रहा है?"

३. <u>सामाजिक आयाम</u>

समाज तभी स्थिर रह सकता है जब उसमें कुछ मूलभूत मूल्य जीवित रहें। यदि हर व्यक्ति केवल स्वार्थ से प्रेरित हो, तो सामूहिक जीवन धीरे-धीरे टूटने लगता है।

इसलिए धर्म का संबंध परिवार, समाज, दायित्व, न्याय और पारस्परिक संतुलन से भी जोड़ा गया।

४. <u>आंतरिक आयाम</u>

सनातन दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण संघर्ष बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक माना गया।

मनुष्य के भीतर ही -

- क्रोध और करुणा,
- लोभ और संतोष,
- विवेक और मोह,
- अनुशासन और असंयम

का संघर्ष चलता रहता है।

धर्म का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य इस आंतरिक संघर्ष में चेतना को उच्च दिशा देना था।

ऋत, सत्य और धर्म

वेदों में “ऋत” की संकल्पना अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऋत का अर्थ है - ब्रह्मांडीय व्यवस्था, वह सिद्धांत जिसके कारण अस्तित्व संतुलित रहता है।

इसी व्यवस्था के अनुरूप जीवन जीना धीरे-धीरे “धर्म” के रूप में समझा गया।

ऋत से ही “सत्य” का संबंध भी जुड़ता है।

सत्य केवल तथ्य बोलना नहीं था। सत्य वह था जो वास्तविकता के अनुरूप हो। और धर्म वह जीवन-पद्धति थी जो मनुष्य को उस सत्य के साथ सामंजस्य में लाने का प्रयास करे।

इसलिए धर्म कोई मनमाना नियम-संग्रह नहीं था।

धर्म इसलिए महत्वपूर्ण था क्योंकि कर्मों के परिणाम होते हैं।

- क्रोध संबंधों को तोड़ता है।
- लालच समाज को असंतुलित करता है।
- असंयम दुःख बढ़ाता है।
- सत्य विश्वास उत्पन्न करता है।
- करुणा जीवन को कोमल बनाती है।

धर्म का उद्देश्य मनुष्य को इस व्यापक कारण-परिणाम की व्यवस्था के प्रति जागरूक करना था।

धर्म : केवल विश्वास नहीं, बल्कि सामंजस्य

आधुनिक संसार में अनेक लोग धर्म को केवल "belief system" अर्थात् विश्वास-प्रणाली के रूप में देखते हैं। किन्तु सनातन दृष्टि में धर्म केवल किसी विचार को मान लेने का नाम नहीं था।

यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन पूजा करे, परंतु उसका व्यवहार अहंकार, क्रोध और असत्य से भरा हो, तो क्या केवल बाहरी धार्मिकता पर्याप्त है?

शास्त्र बार-बार मनुष्य को भीतर देखने के लिए प्रेरित करते हैं।

धर्म का उद्देश्य केवल मान्यताओं का संग्रह नहीं था; उसका उद्देश्य जीवन में संतुलन उत्पन्न करना था।

- विचारों में संतुलन
- व्यवहार में संतुलन
- इच्छाओं में संतुलन
- संबंधों में संतुलन
- और अंततः चेतना में संतुलन

इसीलिए भगवद्गीता बार-बार "योग" और "समत्व" की बात करती है।

धर्म मनुष्य को अराजकता से सामंजस्य की ओर ले जाने का प्रयास है।

धर्म को केवल पहचान तक सीमित क्यों नहीं किया जा सकता

समय के साथ धर्म का एक बड़ा भाग केवल पहचान में बदलने लगा।

लोगों ने स्वयं को धार्मिक समुदायों से जोड़ना तो जारी रखा, किन्तु यह प्रश्न कम होता गया कि धर्म वास्तव में जीवन में कैसे उतरे।

आज कई लोग धर्म की रक्षा की बात करते हैं, परंतु वही लोग -

- क्रोध,
- असहिष्णुता,
- असत्य,
- अपमानजनक व्यवहार,
- और अहंकार

से भरे हुए दिखाई देते हैं।

यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है -

यदि धर्म मनुष्य को भीतर से बेहतर न बनाए, तो केवल बाहरी पहचान का क्या अर्थ रह जाता है?

सनातन परंपरा में धर्म केवल समूहगत पहचान नहीं था। वह आत्मपरिष्कार की प्रक्रिया था। महाभारत बार-बार यह दिखाता है कि धर्म अत्यंत सूक्ष्म है। कई बार बुद्धिमान व्यक्ति भी सही निर्णय को लेकर संघर्ष करते हैं।

<u>प्राथमिक शास्त्रीय संदर्भ</u>

<u>स्रोत</u> : महाभारत

<u>संस्कृत</u> : धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् ।

<u>लिप्यंतरण</u> : dharmasya tattvaṁ nihitaṁ guhāyām

<u>अर्थ</u>

धर्म का सार सूक्ष्मता में छिपा हुआ है।

यह पंक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण है।

धर्म अंधी कठोरता नहीं है। वह जागरूकता, विवेक, संवेदनशीलता और उत्तरदायित्व की माँग करता है।

धर्म का उद्देश्य केवल "धार्मिक पहचान" बनाना नहीं था। उसका उद्देश्य मनुष्य की चेतना का परिष्कार करना था।

यदि यह यात्रा आपको सार्थक लगी...

तो आगे के अध्यायों में जानिए –

• शास्त्रों को समझने की सही दृष्टि
• कथाओं के पीछे छिपे प्रतीकात्मक और दार्शनिक अर्थ
• तथा आत्मपरिवर्तन की दिशा में सनातन धर्म का मार्ग

पूर्ण पुस्तक शीघ्र उपलब्ध होगी।